REVIEW ARTICLE

छायावादी काव्य में नारी के स्थान का अध्ययन

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. VI, Issue No. XII, October-2013, ISSN 2230-7540

AN INTERNATIONALLY INDEXED PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. VI, Issue No. XII, October-2013, ISSN 2230-7540

छायावादी काव्य में नारी के स्थान का अध्ययन

Prem Chandra Tiwari

Research Scholar, Sai Nath University, Ranchi, Jharkhand

---------------------------------x---------------------------------

छायावादी काव्य का एक नया पक्ष जो विश्व–मानवतावादी है। वह उच्चतर आदर्श को रखता हुआ भी यथार्थपरक जगत से दूर का नहीं है। छायावादी काव्य का कल्पना सत्य भविष्य की आकांक्षाओं को मानवमात्र के स्वाभाविक विकास को तथा उसके ज्ञानवर्धन में किसी अतिवादी–चिन्तन के लक्ष्य को युगानुकूल सन्तुलित दृष्टि देता है।

इस काव्यधारा के बीज रूप में आदर्श और यथार्थ की गति को समरूपा माना गया है। यद्यपि अनुभूति की अभिव्यक्ति में व्यक्तित्व की मानसिक स्थिति का पूर्ण चित्र खींचा गया है। जो इस काव्य की व्यापकता का स्वरूप निर्माण करने में सहायक हुआ। यह निर्माण शक्ति आत्मा की ही है। इस अर्थ में छायावाद अनेक मुखी तथ्यों को एकरूप करने वाला काव्य पदार्थ है। स्वच्छन्दतावादी काव्य के विषय की प्रकृति पर प्रकाश डालते हुए राबर्ट लैगव्यूम ने ठीक ही कहा है– ''चिन्तन के क्षेत्र में अनेकत्व की एकता है।''

हिन्दी के छायावादी काव्य की प्रकृति तथा सांस्कृतिक पक्ष व्यक्ति धर्म के रूप में ही दिखाई देता है। छायावादी प्रकृति का मूल केवल इन्द्रियपरक संवेदना की निहित मे किसी भावात्मक आदर्श में नहीं आँका जा सकता।

''छायावाद युग की सांस्कृतिक और छायावादी काव्यधारा में प्रयुक्त संस्कृति में कोई अन्तर हो सकता है तो वह काव्य के माध्यम से युग के परिप्रेक्षण में तथा कवियों के मन पर पड़े प्रभावों के रूप मे देखा जा सकता है।

छायावादी काव्य का रूप इस दृष्टि से न तो केवल कलात्मक आन्दोलन मात्र था और न उसे व्यक्तिगत उन्मेष ही कहा जा सकता है।'' जो विद्वान छायावादी काव्य के इस व्यापक क्षेत्र को पूँजीवाद तथा सामन्तवाद के प्रति मध्यवर्ग या विरोध मात्र स्वीकार करते हैं वे कम से कम युग की परिस्थितियों और जातीय मनोविज्ञान द्वारा निर्मित व्यक्तित्व को केवल समाजशास्त्र की दृष्टि से देखते हैं।

छायावादी काव्य में ठोस भावुकता के साथ–साथ बुद्धिवादी, दृष्टिकोण (निराला जी) नाटकों में युगीन समस्याओं की अभिव्यक्ति तथा गद्य में तीखे व्यंग्यों के स्वरूप में हमें युग वातावरण के अनुकूल दिखायी देता है। स्वच्छन्दतावादी साहित्य, जिसकी अर्न्तभूमिया कल्पना व्यापार से विभूषित होकर सूक्ष्म की व्यंजना करती हो उसे 'समाज का प्रतिबिम्ब' या जीवन की आलोचना किसी वैज्ञानिक पद्धति के आधार से नहीं माना जा सकता है। सामाजिक स्थितियों की प्रतिकूलता में जातीय संस्कारों के व्यक्तिपरक लक्षणों की रचनात्मक प्रक्रिया चेतन मन की अपेक्षा अवचेतन में अभिव्यक्ति ढूढ़ती है। हिन्दी के छायावाद का विषय पक्ष तथा अभिव्यंजना पक्ष से इसी से अनुस्यूत दिखाई देता है।

हिन्दी में सन् 1913 से 1920 के लगभग एक विशिष्ट प्रकार की रचनायें पर्याप्त संख्या में मिलने लगी थी। यह रचनायें अपने वर्ण विषय, विषय प्रतिपादन तथा रचना शैली में द्विवेदी युगीन काव्य से भिन्न प्रकार की थी, इसमें द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता के स्थान पर वस्तु के राग–विराग रूप के प्रति नीतिमूलक सुधारवाद तथा आदर्शवाद के स्थान पर स्वछन्द एवं कोमल भावों के प्रति प्रबन्ध के स्थान पर गीत रचना के प्रति और कला पक्ष में स्वच्छन्द अमूर्त उपमानों चित्रमयी भाषा नवीन प्रतीकों तथा शब्दों के लाक्षणिक प्रयोगों के प्रति रूचि प्रदर्शित की गयी। यह नवीन प्रकार की काव्य धारा 1925 से लेकर 1937 तक के अपने उत्कर्ष युग में हिन्दी के लिए वरदान सिद्ध हुई। ''उस युग की प्रतिनिधि पत्रिका 'सरस्वती' में छायावाद का सर्वप्रथम उल्लेख जून 1921 ई0 के अंक में मिलता है।'' इस तरह उन कविताओं के लिए हिन्दी छायावाद और अंग्रेजी 'मिस्टिसिज्म' शब्द चल पड़े और उन दोनों में भी हिन्दी छायावाद अधिक प्रचलित हुआ।

छायावाद की परिभाषा– छायावादी कवियों के शब्दों में:–

छायावाद के आलोचकों ने अनेक परिभाषायें दीं, किन्तु स्थूल रूप में इन आलोचकों को दो श्रेणी में विभक्त किया जा सकता है। एक तो वे आलोचक जो स्वयं छायावादी कवि थे और अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करने में उन्होंने 'छायावाद' की व्याख्या की। दूसरी कोटि में अन्य सभी प्रकार के छायावादी, प्रभावाभिव्यंजक प्रगतिवादी इत्यादि आते हैं।

कविवर जयशंकर प्रसादः–

''कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश–विदेश की सुन्दरी को बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे 'छायावाद' नाम से अभिहित किया गया।''

कविवर सुमित्रानन्दन पन्तः–

''वे छायावाद को पाश्चात्य साहित्य के रोमांटिसिज्म से प्रभावित मानते हैं इसलिए पन्त जी के काव्य का आदर्श अंग्रेजी रोमांटिक प्रतिवर्तन के काव्यादर्श के अनुरुप था, उसमें वेदनानुभूति 'रोमांटिक शोक' के रूप मे आई।''

कवियित्री महादेवी वर्मा:–

छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिये जो प्राचीनकाल से बिम्ब–प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दुःख से उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती है।

''छायावाद स्थूल की प्रतिक्रिया में उत्पन्न हुआ था–छायावाद ने कोई रूढ़िगत अध्यात्म या वर्गगत सिद्धान्तों का संचय न देकर हमें केवल समष्टिगत चेतना और सूक्ष्मगत सौन्दर्य सत्ता की ओर जागरूक कर दिया था।''

डॉ0 रामकुमार वर्मा:–

''आत्मा और परमात्मा का वाग्विलास रहस्यवाद है और वही छायावाद हैं, वह यह भी स्वीकार करते हैं कि परमात्मा की छाया आख्या में पड़ने लगती है और आत्मा की छाप परमात्मा में, यही छायावाद है।''

आचार्य नन्द दुलारे बाजपेई:–

''मानव अथवा प्रकृति की सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भाव मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।''

शान्तिप्रिय द्विवेदी:–

''जिस प्रकार 'मेटर आफ फैक्ट इतिवृत्तात्मक के आगे की चीज छायावाद है, उसी प्रकार छायावाद के आगे की चीज रहस्यवाद है।''

डॉ0 गंगा प्रसाद पाण्डेय:–

''छायावाद नाम से ही उसकी छायात्मकता स्पष्ट है। विश्व की किसी वस्तु में एक अज्ञात सा प्राण छाया की झाँकी पाना अथवा उसका आरोप करना ही छायावाद है।''

डॉ0 नगेन्द्र:–

छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव–पद्धति है। जीवन के प्रति एक विशेष प्रकार की भावात्मक दृष्टिकोण है।

डॉ0 रामविलास शर्मा:–

''छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं रहा वरन् थोथी नैतिकता रूढ़िवाद और सामन्ती साम्राज्यवादी बन्धनों के प्रति विद्रोह रहा है।

छायावाद के प्रमुख चार आधार स्तम्भ हैं– जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी, 'निराला', सुमित्रानन्द पन्त, महादेवी वर्मा।

विद्वानों ने छायावाद को प्रेम और सौन्दर्य का काव्य कहा है। यहाँ प्रेम और उसके सौन्दर्य का रूप भी परम्परागत स्वरूप से अलग नये युग के अनुकूल दिखाई देता है। जैसा कि पहले अध्याय में कहा गया है कि छायावाद काव्य–प्रक्रिया में रहस्यानुभूति का स्वरूप भी अपना स्थान रखता है जो अर्ध्वागामी सत्य के रूप में दर्शन तथा लौकिक रूपों, स्वस्थ मानवीय चित्रों की मानसिक सृष्टि करता है। ''छायावादी काव्य का आलम्बन पक्ष एक मनोवैज्ञानिक तथा साहित्यिक प्रश्न बन गया है जो इन कवियों के मनःस्त्रोतों में जो विद्रोह की स्थिति है, वह उनके व्यक्तिगत तथा सामूहिक स्वरूपों का एक कारण रूपा बन गई है। इसी कारण इनके काव्य का आलम्बन एकदम स्पष्ट नही हो सका। इन कवियों के व्यक्तिगत जीवन में प्रेम के महात्म्य को सदैव प्रमुखता मिलती रही परन्तु काव्य में उनकी अभिव्यक्ति जिस सांस्कृतिक आवरण में हुई उसके विराट मानवीय स्वरूप में जो व्यक्तिगत प्रेम मधुचर्या की टीस बनी रही है उसमें लौकिकता का स्पष्ट आभास मिलता रहा है।'' यह लौकिकता संयमित रूप में ही प्रस्तुत की गयी इसमें निहित विद्रोही प्रवृत्ति से पूर्ण संस्कृत व्यक्तित्व इस निवेदित प्रेमपक्ष को वासना के रूप में ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया गया, उसमें भाव और भाषा की उदात्तमय स्थितियों का स्वस्थ चित्र प्रस्तुत है।

छायावादी कवियों ने रीतिग्रस्त नारी के रूप सौन्दर्य को सूक्ष्म तथा गुण सौन्दर्य के रूप में देखा, उसे सहचरणी, माँ, श्रद्धा और भारत माँ, आदि रूपों में स्वीकार किया, उसे द्विवेदी युगीन आदर्शों की लड़ियाँ नहीं पहनाया। अतः छायावादी काव्य का श्रृंगार स्वरूप एवं व्यापक रूप में सामने आता है। ''प्रकृति में नारी चेतना के विविध रूपों को देखकर उनकी प्रेम–रूपा अभिव्यक्ति करना एक ओर तो आत्मा के विस्तार की गरिमा का संकेत था, दूसरी ओर मानसिक प्रेम की अभिव्यक्तिगत शान्ति भी थी जो इस काव्य के अशरीरी प्रेम का स्वरूप धारण करती है, क्योंकि यह प्रेम जागरणशील संस्कृति के लिए गुणात्मक है क्योंकि इसका सौन्दर्य मानसिक प्रवृत्तियों का उदात्त बनाता है, अतः इन कवियों में अशरीरी प्रेम का वांछनीय रूप प्रकट हुआ।''

मनः प्रेम का भोगात्मक स्वरूप भी प्रकृति चेतना के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, परन्तु ऐसा नहीं हुआ क्योंकि नारी को युग की आदर्श तथा पुरूष शक्ति चेतना का परिचायक के रूप में कर लिया गया था। पर अब मानव में पियूष स्त्रोत सी बहने वाली श्रद्धा थी। यदि 'पन्त जी' और 'महादेवी जी' के काव्य का विमोचन करें तो ज्ञात होगा कि पन्त जी की 'ग्रन्थि' में प्रेम के अनेक व्यक्तिवादी स्वरूप दिखाई देते हैं, इनमें भोगपक्षीय स्वर प्रमुख रहा है–

शीश रख मेरा, सुकोमल जांघ पर,

शशिकला–सी एक बाला व्यग्र हो,

लाज की मादक सुरा की लालिमा

फैल गालों में नवीन गुलाब से–

छलकती थी बढ़ा–सी सौन्दर्य की

अधखुले सस्मित गढ़ों में, सीप से।

पंत जी के काव्य में प्रेमपक्ष का यह स्वरूप उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में विरल रेखाचित्र ही उपस्थित कर रहा है। प्रेम की भूख ने कवि के मन को ग्रसित करके भी उस पर शासन नहीं किया है। वह वियोगी कवि के रूप में विरह विकलित अवस्था को काव्य की मूल प्रेरणा स्वीकार करके प्रवृत्ति के व्यक्त सौन्दर्य में रागात्मक प्रेम सम्बन्धों को अंकित करने लगा। ''व्यक्ति के प्रेम का उदात्तीकृत रूप कवि की आत्मा का विस्तार उस विराट धरातल पर करता है जहाँ शेष प्रकृति के साथ सचेतन राग सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। यहाँ कवि के मन की कुण्ठा, कुण्ठा न रहकर आत्मप्रसार की निर्झरिणी बन जाती है, जिनमें संकोच

की भावनायें बह जाती हैं। बाहय प्रतिक्रिया ही प्रक्रिया के रूप में व्यक्त सौन्दर्य का चित्रांकन करने लगती है।''

व्यक्ति–मनोविज्ञान–विश्व चेतना की प्रकृति अवस्थाओं को व्यक्त करने लगता है। यहाँ 'शिव' का मनोवैज्ञानिक रूप तथा 'सत्य' का भाववादी रूप ही सौन्दर्यगर्भा हो जाता है साथ ही पन्त जी के काव्य में श्रृंगार की बेलायें हैं तो परन्तु वे कल्पना के माध्यम से आत्मिक बन गयी हैं, उनमें दार्शनिक पुट भी दिया गया है।

छायावादी काव्य के श्रृंगार पक्ष को केन्द्र मानकर महादेवी जी के काव्य पर भी दृष्टि डालना आवश्यक है। छायावादी पन्त की भाँति ''महादेवी जी का काव्य भी निश्चित सूत्र रेखाओं में बना हुआ है। प्रेम की व्यक्तिनिष्ठा की अनुभूतियाँ ही उद्‌भव के स्त्रोत तथा विकास की सीमायें हैं। इसी लौकिकानुभूति का परिष्कार रहस्यवाद के रूप में दिखाई देता है, उनके व्यक्तिगत अनुरागों में जो स्वप्निल रूप व्यंजना है, उसमें शारीरिक भोग की गन्ध नहीं आने पाई है।''

ब्रह्य, जीव, माया के रूपों में प्रेम सम्बन्धों को साम्प्रदायिक नहीं बनाया गया है। उनके प्रेम में मिलन की आकांक्षा विछोह का क्षोभ एक साथ मिलता है, परन्तु प्रेम बौद्ध धर्म के प्रभावों तथा सन्त साहित्य की निर्गुणिया प्रवृत्ति के माध्यम से जीवन और जगत के विभिन्न पहलुओं को रागात्मक रूप प्रदान करता हुआ उसकी प्रेमपरक अभिव्यक्ति करता है। साथ ही उनके विरह शक्ति ह्रदय पर अतीन्द्रियता तथा लौकिकता के बन्धन भी लग गये उनकी रहस्यवादी प्रकृति में शारीरिकता अधिक है। प्रसाद जी के आँसू का आलम्बन 'अप्रत्यक्ष' होकर भी मानवीय संवेदनाओं से पूर्ण है। ''इस काव्य की संवेगावस्था की दशा में रूप चित्रों का सजीव विधान तथा प्रिय के मिलन के क्षणों में जीवन में जीवान्त और बाह्य प्रकृति में हर्ष के भावों का नई शैली और नये रूप में वर्णन मिलता है''।

नारी के प्रेम का स्वच्छन्दतावादी चित्रण निराला जी के काव्य में मिलता है। वह नारी को शक्ति के रूप में भी देखते हैं, वीर देश की वीरांगना का चरित्रांकन ही निराला के राष्ट्रीय काव्य में श्रृंगार रस की सहेतुक वर्णना है, उनमें व्यक्तिगत प्रेम का लौकिक रूप हैं, परन्तु उतना वायवी और सकुचित नहीं दिखाई देता है, जितना छायावादोत्तरकालीन कवियों में निहित है।

इस प्रकार छायावादी काव्य में लौकिक प्रेम का स्वरूप संयत–श्रृंगार तथा अमानुषिका रूप में 'कौन', करूणाकर', 'चिर प्रियतम', 'अमूल–अनूप' आदि के रूपों में मिलता है। इस रहस्योन्मुख प्रेम में व्यक्त सत्ता के विविध रूपों का जैसा गत्यात्मक संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसमें उत्सुकता और मिलन आकांक्षा के क्षण भी प्रेम की अनेकमुखी रंगीनियों से रंगकर अधिक संवेदनीय बन गये हैं अतः छायावादी प्रेम जितना साधना की अवस्थाओं का है, सिद्धि के क्षणों का उतना नही।

नारी के प्रति जागरणशील का उन्मेषः–

छायावादी काव्य में नारी–पुरूष की अतृप्त कामनाओं की तृप्ति मात्र न रह गयी है वरन् वह अपने स्वतन्त्र गुणों के विस्तार में अपनी पूर्ण शक्ति के साथ अवतरित हुई है। रीतिकालीन नारी के समस्त दृष्टिकोणों को अस्वीकार कर द्विवेदीयुगीन देवी नारी को छोड़ छायावाद ने प्रथम बार नारी के सार्वजनिक चारित्रिक गुणों पर सम्पूर्णता के साथ नयी दृष्टि डाली। ''नारी मानव जीवन की अन्तःशीलता में सदैव से ही एक प्रकम्प रही है। अतः संवेदनशील मन में काव्यसृजन के क्षणों की प्राथमिक स्थितियों में ''रति'' को ही स्वीकार किया गया है। छायावाद की विद्रोही भावना में नारी भी एक सांस्कृतिक विद्रोह के रूप में उपस्थित हुई है।'' यह पुरूष जीवन के पथ की सहगामिनी उसके मन की आशा तथा कार्य की सबल है उसका स्वतन्त्र अस्तित्व भी है जो मानवीय चिन्ता के विविध रूपों की दिशा–दर्शिका का कार्य करती है।

'रति की प्रतिकृति' लज्जा रूपी नारी ही इस काव्य–प्रक्रिया की मूल है। छायावाद के प्रत्येक कवि ने नारी के स्वरूप की नारी के चारित्रिक गुणों की उनके सहज–कोमल स्वभाव की अभिव्यक्ति की है। परन्तु इस अभिव्यक्ति के पीछे एक ओर तो सामयिक–सांस्कृतिक जागरण की भूमिका है, दूसरी ओर पाश्चात्य प्रभावों की प्रतिक्रिया तथा 'शील–निरूपण' की अभिनव योजना भी है। नारी स्थूल रूप से एक आदर्श भले ही न रह गयी हो परन्तु सूक्ष्म रूप में उसकी स्थिति की यथासम्भव वांछनीय विवेचना इस काव्य धारा में प्रस्तुत की गई है।

छायावादी कवियों में नारी की अमोघ शक्ति में विश्वास किया गया है। अतः पुरूष ने प्रेम और सौन्दर्य के सचेतन रूप को उसमें देखा, उसके कर्मशील व्यक्तित्व पर विश्वास करके राष्ट्रीय चेतना सूत्रों में कार्यरत मानव को आशा का संबल दिया।

इसके साथ ही लौकिक रूप वर्णन की सज्जा के मोह में यह काव्य कतिपय दुर्बल पक्षों से भी युक्त है। अतः छायावादी काव्य की नारी अन्तःचेतना की प्रक्रिया के रूप में समस्त कार्यकलापों की अंगी–तरंगना है जो अपने गुणों से मानवमात्र की प्रवृत्तियों से रागात्मक सम्बन्ध जोड़ती हुई भी अबला नहीं है। वह स्वतन्त्र है, परन्तु नामित नहीं। वह छायावादी काव्य की कल्पना तूलिका है, जो अनुभूति की क्रिया के समस्त रूपों को विविध छविया देती है। वह जीवन की प्रकार है उसकी सामाजिक उपयोगिता है, उसमें 'स्व' शक्ति का गर्व तथा परहिताय का आदर्श है। छायावादी काव्य में प्राकृतिक चेतना के स्वरूपों में उसी के गुणों की प्रशस्ति हुई है।

छायावादी काव्य प्रधानतः श्रृंगारिक है, क्योंकि उसका जन्म हुआ है। व्यक्तिगत कुण्ठाओं से व्यक्तिगत कुण्ठायें प्रायः काम के चारो तरफ केन्द्रित रहती हैं, उसके व्यक्त होने के दो रूप हैं। प्रकृति के द्वारा नारी वैभव के आरोपण द्वारा नारी के मन और शरीर के मांसल चित्रण द्वारा। इसमें श्रृंगार के प्रति उपभोग का भोग न मिलकर विस्मय का भाव मिलता है। यही काव्य है कि इसकी अभिव्यक्ति कल्पनामय है। छायावादी काव्य में कवि प्रेम को शरीर की भूख न समझकर रहस्यमयी चेतना समझता है। नारी के अंगों के प्रति उसका आकर्षण नैतिक आंतक से सहम कर जैसे एक अस्पष्ट कौतूहल में परिणित हो गया है। अतः स्वच्छन्दतावादी या छायावादी श्रृंगार मानसिक होकर भी आत्मानुभूतियों की उच्चतर अवस्थाओं का व्यक्त रूप है। जहाँ विरवात्मा का स्वरूप भी दिखाई देता है। यद्यपि उसकी अपनी सैद्धान्तिक भूमि भी है जहाँ वह लौकिक और अलौकिक के भेदों में दिखाई देता है।प्रकृति की भाँति छायावाद में नारी चित्रण की प्रधानता है। छायावादी कवियों में न केवल प्रकृति में नारी का आरोपण किया अपितु स्वतन्त्र रूप में भी उन्होंने नारी के नैसर्गिक रूप का प्रचुर चित्रण किया।

आधुनिक युग में पुरूष और नारी के सम्बन्ध में स्वच्छन्दता आई। व्यक्ति–स्वातंत्र्य के परिणामस्वरूप नर और नारी में स्वच्छन्द प्रेम का विकास हुआ। साहित्य में पहली बार नारी को प्रेयसी के समान अधिकार और उच्चासन तथा माता का गौरव प्राप्त हुआ।

छायावादी कवियों ने नारी की मुक्ति का नारा लगाया। प्रकृति की ही तरह उन्होंने नारी के दो रूपों का ही मुख्यतः अवलोकन किया है। उसका एक 'सखि', सहत्वरी, 'प्राण–प्यारी' का रूप और दूसरा 'देवि माँ' का विराट रूप, पूर्व युग की नारी भावना से छायावादी नारी भावना का अन्तर समझने के लिए मैथिलीशरण गुप्त और प्रसाद जी की नारी–भावना का अन्तर समझ लेना पर्याप्त है। एक नारी कुलवधू गृहलक्ष्मी और कर्तव्य–परायणा पत्नी उर्मिला है, तो दूसरे की निसर्गवाला श्रद्धा, एक में मध्यकालीन आदर्श है तो दूसरी नवयुग की प्रतिमा है। गुप्त जी की नारी पुरूष का आश्रय खोजती है। इसके विपरीत प्रसाद की नारी पुरूष को सहारा देने वाली पुरूष का शीतल उपचार है।

छायावादी रूढ़ियों का स्वच्छन्द प्रेम अद्भुत है। प्राचीन कवि अपने निजी प्रणय को सीधे ढंग से व्यक्त करने में असमर्थ था। पन्त की 'उच्छ्वास', 'आसूँ', ग्रन्थि आदि रचनाओं में प्रसाद ने 'आसूँ' में तथा 'निराला' ने 'परिमल' में कई गीतों में अपनी प्रणयानुभूति आत्मभिव्यक्ति के रूप में प्रकट की।

''नारी का शारदा के रूप में अनुभव 'आधुनिक तुलसीदास ही कर सकता था। प्रकृति की ही तरह छायावादी कवियों ने नारी के भी विराट रूप का चित्रण किया।'' इस प्रकार छायावादी काव्य में प्रेम का जो अभिरूप नारी की अपूर्व प्रतिष्ठा और सौन्दर्य तथा यौवन का जो मानस मन्थनकारी नवीन अनुभव पाया जाता है वह निराला के काव्य में भी अपने उत्कृष्ट रूप में मिलता है।

इस तरह साहित्य में पहली बार स्त्री और पुरूष के बीच वैयक्तिक स्वच्छन्द प्रेम का अभ्युदय हुआ। यह स्वच्छन्द प्रेम व्यक्ति–स्वातन्त्र्य का ही अनिवार्य तथा उसका आवश्यक अंग है। इसके फलस्वरूप पहली बार छायावादी कविता में नारी को प्रेयसी का ऊँचा आसन प्राप्त हुआ। प्रेयसी, प्रिये, प्रियतमे और सखि, सजनी जैसे सम्बोधन जिस मात्रा में छायावादी कविता में व्यक्त किये गये।

छायावादी कविता में प्रेम को जो प्रधानता दी गई है वह अपूर्व है यहाँ तक कि छायावादी को सामान्यतः प्रेम काव्य समझा जाता है। द्विवेदी युग में भी नारी–पुरूष का दृष्टिकोण बहुत कुछ वही था जो रीतिकाल में था, दोनों युगों में दृष्टिकोणों में मौलिक अन्तर नहीं था।

छायावादी कवियों ने प्रेम को इतनी प्रधानता दी कि स्वतन्त्र रूप से 'प्रेम' के ऊपर कई कवितायें लिख डाली। जिस प्रकार अत्यन्त प्राचीन काल में 'काल–देव' की प्रधानता थी और काव्य में उसकी उपासना का प्रायः वर्णन गया जाता था–जैसे कालिदास के काव्यों और नाटकों में– ''उसी तरह छायावाद युग में प्रेम को प्रधानता दी गई। प्रेम के विश्व–व्यापी प्रभाव से सभी छायावादी कवि प्रभावित थे। वे प्रेम के जादू में थे उन्होंने प्रेम को अत्यन्त महिमामय रूप प्रदान किया।''

प्रेम को यह प्रधानता निराला के यहाँ भी मिली–परोक्ष रूप से प्रेम की अभिव्यंजना तो अनेक गीतों और कविताओं में हुई परन्तु उन्होंने 'प्रेम' की महिमा में अलग से एक कविता भी लिखी है– ''अनामिका' की 'प्रेम के प्रति' प्रेम को आतुर कहकर मुक्तमना निराला ने नवीन युग की स्वच्छन्दता का परिचय तो दिया ही बँधे हुए प्रेम को मुक्त कर दिया।

इस युग की अभिनव प्रेम भावना से पुरूषों के साथ नारियाँ भी प्रभावित हुई थीं और उन्होंने भी सामाजिक दबाव के बावजूद अपने ह्नदय की स्वच्छन्द प्रेम भावना की अभिव्यक्ति की–

महादेवी के गीतों में प्रेम की जो पीर व्यक्त हुई हैं, वह सह्नदयों से छिपी नहीं है उनके लिए तो 'प्रिय से कम मादक–पीर नहीं है।

''छायावादी कवियों ने प्रेम को जो इतनी प्रधानता दी थी उससे नीरस जीवन में सरसता का संचार हुआ, सुधार युग की अस्वाभाविक सुधक्कड़ी वृत्ति से छुट्टी मिली साथ ही साथ मध्य युगीन ओछी रति भावना से ऊपर उठकर मनुष्य प्रेम की उच्च भूमि पर विचरण करने लगा।''

महादेवी जी को एक कोमल नारी–ह्नदय प्राप्त है जो केवल कवयित्री होने के कारण सह्नदय एवं सरस ही नही है अपितु सात्विक गुणों से भी परिपूर्ण हैं, क्योंकि उनकी गीतियों में जिस निश्छल प्रेम वेदना का निरूपण हुआ है, उसमें कटुता है न कहीं द्वेष, न कहीं घृणा और न कहीं प्रतिकार की भावना है। उनकी वेदना तो अपनी सहज विकृति में विश्व–वेदना सी बन गई है जिसमें सम्पूर्ण मानवता का शोक भरा हुआ है। सम्पूर्ण दुःखी ह्नदयों का रूदन समाया हुआ है। यह प्रेम–वेदना एक कोमल नारी की तड़पसे आप्लावित है इसमें सुकुमार भावों का कम्पन हिलोरे ले रहा है और इसमें 'चिर–दग्ध–दुखी–वसुधा' का ह्नदय करूणा से नैसर्गिक है और यह पीड़ा सहज अनुभूति का परिणाम है इसलिए महादेवी ने सत्य और ऋतु का आश्रय लेकर अपनी शोकानुभूति को वाणी प्रदान की है।'' कलाकार ने सत्य का सहारा लेकर वेदना की टीस को मुखरित किया है और पीड़ित एवं व्यथित वर्ग की प्रतिनिधि बनकर उन सम्पूर्ण करूण परिस्थितियों का चित्रण किया है जो दुःखी प्राणियों के जीवन में उत्पन्न होती है और जिनके फलस्वरूप वे रात–दिन व्यग्र व बेचैन बने रहते हैं यद्यपि सभी छायावादी कवियों ने वेदना एवं विरहानुभूति का निरूपण किया है तथापित महादेवी जी की सी तरलता, सहजता एवं सात्विकता अन्यत्र नहीं दिखाई देती क्योंकि महादेवी जी को विरह का सहज स्त्रोत रूप नारी–ह्नदय प्राप्त है और उस ह्नदय में निश्छल प्रेम का सिंधु उमड़ रहा है, इसीलिए तो उनकी वाणी सत्य ऋतु एवं सात्विकता से परिपूर्ण जान पड़ती है।

महादेवी जी की विरहानुभूति वेदना की उस सात्विकता से आप्लावित है जो नारी ह्नदय की देन है और जिसमें कृत्रिमता एवं आडम्बर के लिए तनिक भी स्थान नहीं है।

भारतीय साहित्य नारीत्व के गौरवगान से परिव्याप्त है और नारी प्रत्येक रूप में स्नेह, आदर, श्रद्धा की पात्र रही है। यदि कहीं नारी–प्रकृति का कोई पक्ष निन्दनीय कहा भी गया है तो वह मूल नारी प्रकृति की उदात्त आभा का आभास देने के लिए ही है नारी के उत्कर्ष को जो सामान्य सीमा रेखायें मनीषियों ने निर्धारित कर रखी है। उनकी तुलना में यदि कहीं, किसी समय विशेष में कोई न्यूनता प्रतीत हुई तो समाज के हित–चिन्तक उसके प्रति गलत निर्देश देने लगे वह निन्दा ग्रहण मात्र नहीं है। वरन् नारी को पूर्णता शुद्ध और पवित्र जीवन्त रूप देखने की अभिलाषा का उद्रेक है। नारी गौरव और प्रशस्ति की अपेक्षा नारी निन्दा के वाक्य अति नगण्य परिणाम है और उसमें भी नारी की प्रकृति मधुरिमा तथा करूणिमा आदि विशिष्टताओं को अस्वीकार नहीं

www.ignited.in

किया गया केवल परिस्थिति वैमान्य–जन्य ऊपरी दोषों की ओर संकेत किया गया है।

''युद्धकाल में प्रेम रोमानी सिहरनों से तरंगित रहा। नारी पुरूष शौर्य वीर की प्रशंसिका, पुरस्कारिका और उपासिका रही तथा पराक्रमी पुरूष का गलहार बनने में उसने गौरव का अनुभव किया। नर–नारी दोनों का प्रेम देश–भक्ति पर स्वयं न्यौछावर होता रहा और नारियों ने सदा समर–तत्पर पुरूषों की भुजाओं की पूजा की, राष्ट्र सम्मान रक्षा की प्रेरणा उन्हें दी। वे स्वयं भी देश–जाति–सम्मान हेतु जौहर की ज्वालाओं में समा गई। पुरूष की चलायमान सत्वशीलता में भी नारी की गरिमा अटल बनी रहीं।'' किन्तु राजनीतिक उथल–पुथल के इस युग में श्रृंगार पक्ष कुछ निर्बल पड़ गया– डॉ0 सत्येन्द्र का कथन–प्रायः सत्य ही है कि इस श्रृंगार में एकांगीयता है। स्त्रीत्व मे पुरूष के लिए आकर्षण मात्र है।

नारी में अपेक्षित सामान्य आदर्शः–

सामान्यतः जनता नारी में उन्हीं गुणों की अपेक्षा रखती थी जिनका प्रतिपादन स्मृतियों और पुराणों में हुआ, निर्धनता और आततायी शासन के उत्पीड़न से दबी हुई जनता यथा–तथा जीवन धारण किये रहने के प्रयास में लीन थी। अतः नारी से भी यही अपेक्षा की जा सकती थी कि वह अस्तित्व बनाने मे ही प्रयत्नशील हो इसके लिए घर में पूर्ण समरसता सहयोग और शान्ति की आवश्यकता थी जिससे नारी में पुरूष की वशवर्तिता की भावना सर्वाधिक प्रशस्त मानी गयी। हर दशा में पति की आज्ञा का अनुवर्तन, कारण होते हुए भी असन्तोष न व्यक्त करना, अपनी व्यक्तिगत, स्वतन्त्रा आकाँक्षाओं और उत्कर्षों का बलिदान कर देना आदि अपेक्षायें तत्कालीन नारी से की जाती थी।

''सद्गुणों के अतिरिक्त स्त्री धर्म की संरक्षिका और पोषिका भी थी उससे समस्त धार्मिक प्रथाओं के पालन, अनुवर्तन और संवर्तन की आशा की जाती थी, त्यौहारों को विधि–पूर्वक मनाना उसी का उत्तरदायित्व था।''

आधुनिक युग में नारी के प्रति दृष्टिकोण में वासनापरकता बनी रही। यद्यपि नारी की सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में अनेक सुधार भावनाओं का अभिनिवेश हुआ है। नारी के सौन्दर्य रूप में स्थूलता के स्थान पर सूक्ष्मता आई। भावना–रूप की प्रतिष्ठा हुई, प्रकृति के सौन्दर्य मातृ–रूप की भावना होने लगी और नारी के मातृव्व में गरिमा में श्रद्धा की समन्वित हुई।

''युग्र हैं पलकों का उन्मीलन–स्पन्दन में अगणित लय जीवन

तेरी श्वासों में नाच–नाच उठता वेसुध जग सचराचर।''

(महादेवी वर्मा)

किन्तु नारी की निर्बलता और पाश्विकता हिन्दी काव्य में बनी रही, कवियों ने या तो इसके लिए खेद प्रकट किया था पुरूषों को दोषी ठहराया या नारी के प्रति मौखिक प्रशंसा या सहानुभूति प्रकट कर दी। कुछ कवियों की आम राय यही रही कि नारी जीवन की पियूष स्त्रोत है और बनी रहे, भोग और निग्रह का उचित समन्वय करती हुई पुरूष के प्रति आत्म–समर्पण करे, उधर पुरूष की प्रगति कल्याण नारीत्व में समादृत है और दोनो में समरसता रहना ही श्रेयष्कर है।

नारी तुम केवल श्रद्धा हो

विश्वास–रजत नग पग तल में

पियूष स्त्रोत सी बहा करो

जीवन के सुन्दर समतल में

(कामायनी) जयशंकर प्रसाद

समर्पण लो सेवाका भार

संजल संसृति का यह पतवार

आज से यह जीवन उत्सर्ग

इसी पद तल में विगत विकार

(कामायनी) जयशंकर प्रसाद

इन सब प्रयत्नों के बावजूद भी नारी की हीन भावना बनी हुई है और उसको मुक्त करने के अनेक उद्बोधन भी हुए परन्तु वे सब उसे मुक्त करा सकने में सफल नहीं हो सके, इसका यह कारण है कि नारी को हीन समझने की व्यापकता अक्षुण्ण जैसी बनी हुई है और जिन कवियों ने निज पार्थक्य में नारी–मुक्ति का नारा उदात्त किया है वे ही अपनी वसन्तायु में वासना के रंग छिटकाते रहे और तो और यथार्थ चित्रण और नूतन–जीवन विधि के नाम पर भक्तिकालीन विशुद्ध प्रेम–मूर्तियो को भी रीतिकालीन श्रृंगार से आप्लावित कर दिया गया। हरिऔध जी की राधा 'रुपोधन' की –प्रफुल्लप्रायकालिका' रह गयी है जो –'क्रीड़ा कला पुतली' 'नाना भाव विभाव हाल कुशला' और 'भूगिगिमां पंड़िता' बनकर अपनी श्रद्धावलित दिव्यता को पुरुष रंजनकारी नायिका भावना में तिरोहित कर चुकी है और गुप्त जी की सीता पारिवारिक परिहास–विनोद की सृष्टि के लिए अपनी मर्यादा भूल चुकी है।

मुक्त करो नारी को मानव

मुक्त करो जीवन संगिनि को, जननि देवि को आहत

जग जीवन में मानव के संग हो मानवी प्रतिष्ठित।

(पन्त–पृ0–562–63)

वस्तुतः नारी की परतन्त्रता उसकी तनु–मृदुता के कारण हुई स्वयं को रक्षादिक में असमर्थ पाकर अथवा अपने भावोद्रेक के प्रकाशन के लिए आधार पाने के लिए नारी ने पुरुष का आश्रय लेना चाहा। इससे वह पुरूष की उपभोग्या–मात्र बनकर रह गई एवं महादीर्घ काल से उसी वातावरण के आबद्ध रहते चले आने के कारण उसे आत्मस्वरूप की विस्मृति हो गई और वह तरू पर लता की भाँति अपने को पुरुष पर अवलम्बित मानने लगी और उसकी स्वयं की जैवकीय वासनायें उसके समस्त कार्यों का प्रतिफल होने लगी है।

आधुनिक काल में शिक्षा का अभाव भी नरियों के परालम्बन का कारण बना, वैसे तो पुरुष भी अभी तक शत् प्रतिशत शिक्षित

नहीं हो सके हैं किन्तु नारियों में शिक्षा का जागरण और भी कम है।

नारी की इस स्थिति से क्षुब्ध होकर कतिपय कवियों और विचारकों ने नारी को योनिमात्र न समझकर, बन्धन विमुख स्वतन्त्र–व्यक्तित्व मानवी के रुप में प्रतिष्ठित करने का सप्रयत्न किया है। वह पुरुष की सहचरी और आवश्यकता के समय प्रलय–सहेली तक बनकर पूर्ण मानत्व की संस्थापिका बन रही हैं। यह नारी आज संसार की अनीति को चुनौती दे रही है। कवि–भावना में आज वह श्रद्धा की देवी माँ सहचरी प्राण के गौरवान्वित पदों पर आसीन है।

इस उच्चासन से नीचे लाने वाला कोई भी हेतु यदि है तो वह है उसकी अपनी वासनोन्मुख जिसके कारण वह पुरुष के समक्ष अपने को गिरा देती है । इससे मुक्ति पाते ही नारी अभिबन्ध बन जाती हैं उसका रुप मंगलमय हो जाता है। उसका बन्धन भी प्रिय होता है, मुक्तिदायक होता है और अमरत्व प्रदात्ता सा बन जाता है।

नारी का बाह्य सौन्दर्य अन्तः सौन्दर्य की दमक है। सरलता, भोलापन, दया, क्षमा, शील, सदाचार, पावनता आदि से सम्पृक्त नारी की सुधा–स्वरूपता, मुक्ति–प्रदायिनी होकर स्वर्ग की मंजुलता प्रदान कराती हैं सौन्दय–मूर्ति नारी 'कला और गीति की प्रतिमा है काव्य की प्रेरणा है, प्रत्यक्ष सरस्वती है संक्षेप में वह अलौकिक विराट शक्ति का अवतार है।''

इस विराट शक्ति ने जगत के विविध रुपो में अपने को प्रकट किया है। पुरुष भी इसी का अंश है। वह भवचक्र चालिनी, लोक लालिनी है करोड़ों शिव–विष्णु, अज, सूर्य, चन्द्र, तारक, सुरासुर और जीव जग इसी आदि शक्ति से उद्‌भव पातें हैं। नारी शाश्वत माता है। मातृ–रुपी नारी ही विश्वास–संचारिका है। पुरुष का 'चिर–शिशु भाव' अंबा के आंचल पट में पुलकित होता है और माँ के पैरो के तले–तले स्वर्ग की अनुभूति करता है, उसकी स्नेह धार जगत का पालन करती है असहाय संसार को सहारा देती है।

सहायक ग्रंथ सूची

1. प्रबन्ध–पद्य – गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ प्रथम वृत्ति सन्–1991ई0

2. प्रबन्ध–प्रतिमा – भारतीय भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद सन्–1963ई0

3. महाभारत – गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ सन्–1964ई0

4. रवीन्द्र कविता कानन – हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय ज्ञानवापी, बनारस सन्–1954ई0

5. निराला रचनावली – भाग, 1,2,3,4,5,6,7 और 8 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली नया संस्करण सन्–1988ई0

6. निराला ग्रन्थावली – भाग–1,2 और 3 ओंकार शरद् प्रकाशन, केन्द्र लखनऊ।